तमिलनाडु राज्य

बनाम

वी. कृष्णास्वामी नायडू एवं एक अन्य

3 मई, 1979

[माननीय न्यायमूर्ति श्री एस. मुर्तज़ा फ़ज़ल अली और माननीय न्यायमूर्ति श्री पी. एस. कैलासम]

दांडिक विधि (संशोधन) अधिनियम, 1952 (1952 का अधिनियम सं. 66)—विशेष न्यायाधीश—क्या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के अधीन पुलिस अभिरक्षा में किसी अभियुक्त के निरुद्ध किए जाने को प्राधिकृत करने की शक्ति का प्रयोग कर सकता है।

दांडिक विधि (संशोधन) अधिनियम, 1952 (1952 का अधिनियम सं. 66) 28-7-1952 को भारतीय दंड संहिता, 1860 तथा दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 में और संशोधन करने तथा अपराधों के अधिक शीघ्र विचारण का उपबंध करने के लिए अधिनियमित किया गया था। अधिनियम की धारा 6 राज्य सरकार को शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 161 से 165क के अधीन अथवा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5 के अधीन दंडनीय अपराधों के विचारण के लिए विशेष न्यायाधीश नियुक्त करने का अधिकार प्रदान करती है। इस अधिनियम के अधीन नियुक्त विशेष न्यायाधीश तब तक विशेष न्यायाधीश के रूप में अर्हित नहीं होगा जब तक कि वह सत्र न्यायाधीश, अपर सत्र न्यायाधीश अथवा दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 के अधीन सहायक सत्र न्यायाधीश न हो या न रहा हो। धारा 7 यह उपबंध करती है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 अथवा तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, धारा 6 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अपराध केवल विशेष न्यायाधीश द्वारा ही विचारणीय होंगे। धारा 8 विशेष न्यायाधीश को यह अधिकार प्रदान करती है कि वह किसी अभियुक्त को विचारण के लिए अपने समक्ष सुपुर्द किए बिना ही किसी अपराध का संज्ञान ग्रहण करे तथा अभियुक्त का

विचारण करते समय उसे **दंडाधिकारियों द्वारा वारंट वादों के विचारण के लिए** दंड प्रक्रिया संहिता में विहित प्रक्रिया का पालन करना अपेक्षित है। धारा 8(क) विशेष न्यायाधीश को संक्षिप्त रीति से कुछ अपराधों का विचारण करने का अधिकार प्रदान करती है और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 262 से 265 के उपबंध, जहाँ तक लागू हो सकते हैं, लागू किए गए हैं।

उत्तरदाताओं को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन कथित अपराध के लिए राज्य सरकार के सतर्कता एवं भ्रष्टाचार निरोधक प्रकोष्ठ द्वारा गिरफ्तार किया गया। उन्हें अगले दिन विशेष न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत किया गया। उत्तरदाताओं द्वारा जमानत पर छोड़े जाने के लिए किया गया आवेदन विशेष न्यायाधीश द्वारा निरस्त कर दिया गया। पुलिस ने उत्तरदाताओं को 15 दिनों की पुलिस अभिरक्षा हेतु सुपुर्द किए जाने के लिए विशेष न्यायाधीश से प्रार्थना की। यद्यपि वह आवेदन निरस्त कर दिया गया, तथापि एक अन्य आवेदन प्रस्तुत किया गया।

तत्पश्चात् उत्तरदाताओं ने उच्च न्यायालय में (1) यह निर्देश दिए जाने के लिए कि अपराध के अन्वेषण के लंबित रहने तक उन्हें न्यायिक अभिरक्षा में रखा जाए; तथा (2) पुलिस द्वारा उन्हें पुलिस अभिरक्षा में सुपुर्द किए जाने के लिए विशेष न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत आवेदन को अपास्त किए जाने के लिए आवेदन किया। उनका तर्क था कि विशेष न्यायाधीश दंड प्रक्रिया संहिता के अर्थ में दंडाधिकारी नहीं है और इसलिए वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के अधीन किसी अभियुक्त को पुलिस अभिरक्षा में भेजने के लिए सशक्त नहीं है।

उच्च न्यायालय ने इस तर्क को स्वीकार किया और अनुतोष प्रदान किया।

अपील स्वीकृत करते हुए,

अभिनिर्धारित : 1. दांडिक विधि (संशोधन) अधिनियम, 1952 की धारा 6 के अधीन अधिसूचित विशेष न्यायाधीश दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 द्वारा दंडाधिकारी को प्रदत्त

शक्ति का प्रयोग कर सकता है और अभियुक्त को पुलिस अभिरक्षा में निरुद्ध किए जाने के लिए प्राधिकृत कर सकता है। [936 सी]

2. दांडिक विधि (संशोधन) अधिनियम की धारा 8 विशेष रूप से विशेष न्यायाधीश को किसी अभियुक्त के विचारण के लिए उसके समक्ष सुपुर्द किए बिना ही अपराध का संज्ञान ग्रहण करने का अधिकार प्रदान करती है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 193 के प्रयोजनों के लिए अभियुक्त का सुपुर्द किया जाना आवश्यक नहीं है, क्योंकि विशेष न्यायाधीश मूल अधिकारिता वाले सत्र न्यायालय के रूप में विचारण करता है। मूल अधिकारिता वाले सत्र न्यायालय के रूप में वह दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन किसी दंडाधिकारी द्वारा उसके समक्ष सुपुर्द किए बिना ही अपराध का संज्ञान ग्रहण करता है। वस्तुतः वह सत्र न्यायाधीश नहीं है, क्योंकि कोई भी सत्र न्यायाधीश अभियुक्त के सुपुर्द किए बिना सत्र न्यायालय के रूप में अपराध का संज्ञान ग्रहण नहीं कर सकता। [934 सी-डी]

3. दांडिक विधि (संशोधन) अधिनियम, चूँकि एक संशोधी अधिनियम है, अतः उसके उपबंधों का उद्देश्य कुछ अपराधों का शीघ्र विचारण सुनिश्चित करना है। दांडिक विधि (संशोधन) अधिनियम का उद्देश्य प्रक्रिया संबंधी विधि की पूर्ण संहिता होना नहीं है। दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंध तब तक लागू रहते हैं जब तक वे दांडिक विधि (संशोधन) अधिनियम से असंगत न हों। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकालने में कोई कठिनाई नहीं है कि जहाँ दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंध दांडिक विधि (संशोधन) अधिनियम के उपबंधों से असंगत नहीं हैं, वहाँ दंड प्रक्रिया संहिता लागू होती है। [934 ई]

4. यदि कोई विशेष न्यायाधीश, जिसे अभियुक्त के उसके समक्ष सुपुर्द किए बिना ही अपराध का संज्ञान ग्रहण करने की शक्ति प्राप्त है, रिमांड की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सशक्त न हो तथा उसके समक्ष प्रस्तुत अभियुक्त को न्यायिक अभिरक्षा में न भेज सके अथवा उसे जमानत पर रिहा न कर सके, तो इससे एक विसंगतिपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। ऐसा दंडाधिकारी, जिसे किसी अभियुक्त को प्रथम 15 दिनों से आगे की अवधि के लिए रिमांड

पर भेजने का अधिकार है और जिसके समक्ष विशेष न्यायाधीश द्वारा विचारणीय वाद लंबित नहीं है, यदि वह क्षेत्राधिकार रखने वाला दंडाधिकारी नहीं माना जाए, तो इसका अर्थ यह होगा कि उसके पास न तो रिमांड की अवधि बढ़ाने का और न ही अभियुक्त को जमानत पर रिहा करने का कोई अधिकार होगा। इसी प्रकार, यदि विशेष न्यायाधीश को क्षेत्राधिकार रखने वाला दंडाधिकारी नहीं माना जाए, तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अधीन पुलिस प्रतिवेदन उसके समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। [934 एफ-जी]

5. सामान्य उपबंध अधिनियम की धारा 32 में "दंडाधिकारी" को ऐसे प्रत्येक व्यक्ति के अंतर्गत परिभाषित किया गया है जो तत्समय प्रवृत्त दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन दंडाधिकारी की समस्त अथवा किसी भी शक्ति का प्रयोग करता है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 3 उपबंध करती है कि उस संहिता में किसी दंडाधिकारी के प्रति किया गया प्रत्येक निर्देश, जिसमें किसी प्रकार का अर्हकारी शब्द न हो, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, उपधाराओं में विनिर्दिष्ट रीति से अभिप्रेत होगा। यदि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो तो "दंडाधिकारी" पद के अंतर्गत ऐसे दंडाधिकारी भी सम्मिलित हो सकते हैं जिनका उस धारा में विनिर्देश नहीं किया गया है। सामान्य उपबंध अधिनियम में "दंडाधिकारी" की परिभाषा के साथ इसे पढ़ने पर, धारा 167 के प्रयोजनों के लिए विशेष न्यायाधीश को दंडाधिकारी के रूप में अभिहित करने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती। [934 एच-935 बी]

6. उच्च न्यायालय ने मेजर ई. जी. बाराडे बनाम बंबई राज्य, [1962] 2 एस.सी.आर. 195 में इस न्यायालय के निर्णय को, जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 549 के अधीन बनाए गए नियम 3 से संबंधित था, लागू करने में त्रुटि की। उक्त नियम द्वारा अभिप्रेत दंडाधिकारी को अभियुक्त को सुपुर्द किए जाने के उद्देश्य से अन्वेषण करने की शक्ति प्रदान की गई थी, जो विशेष न्यायाधीश के संबंध में लागू नहीं हो सकती। [936 बी]

दांडिक अपीलीय क्षेत्राधिकार : 1976 की दांडिक अपील सं. 292

मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा दांडिक विविध याचिका सं. 1592 तथा 1976 की दांडिक विविध याचिका सं. 1605 में दिनांक 22-4-1976 को पारित निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध।

अपीलकर्ता की ओर से *वी. पी. रमण*, महाधिवक्ता तथा *ए. वी. रंगम।*

उत्तरदाता की ओर से *हरदेव सिंह* तथा *आर. एस. सोढ़ी।*

न्यायालय का निर्णय

माननीय न्यायमूर्ति श्री कैलासम द्वारा प्रदत्त। - इस अपील में विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या दांडिक विधि (संशोधन) अधिनियम, 1952 के अधीन विशेष न्यायाधीश दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के अधीन दंडाधिकारी को प्रदत्त उस शक्ति का प्रयोग कर सकता है जिसके द्वारा अभियुक्त को पुलिस अभिरक्षा में निरुद्ध किए जाने के लिए प्राधिकृत किया जाता है।

यह प्रमाणपत्र के आधार पर अपील तमिलनाडु राज्य द्वारा मद्रास उच्च न्यायालय के दिनांक 22-4-1976 के उस आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जो दांडिक विविध याचिका सं. 1582 तथा 1976 की दांडिक विविध याचिका सं. 1605 में पारित किया गया था।

प्रथम उत्तरदाता वी. कृष्णास्वामी नायडू द्वितीय उत्तरदाता एल. वेंकटस्वामी नायडू का पुत्र है। प्रथम उत्तरदाता तमिलनाडु के तत्कालीन स्वास्थ्य मंत्री का राजपत्रित व्यक्तिगत सहायक था। उसे तथा द्वितीय उत्तरदाता को तमिलनाडु पुलिस के सतर्कता एवं भ्रष्टाचार निरोधक प्रकोष्ठ द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन कथित अपराध के लिए 2 अप्रैल, 1976 को गिरफ्तार किया गया। उन्हें अगले दिन अर्थात् 3-4-1976 को विशेष न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत किया गया। उत्तरदाताओं ने जमानत पर छोड़े जाने के लिए विशेष न्यायाधीश के समक्ष आवेदन किया। याचिका निरस्त कर दी गई। पुलिस निरीक्षक (सतर्कता) ने उत्तरदाताओं को 15 दिनों की अवधि के लिए पुलिस अभिरक्षा में सुपुर्द किए जाने हेतु विशेष न्यायाधीश के समक्ष आवेदन किया। वह आवेदन भी निरस्त कर दिया गया। उस आवेदन के निरस्त किए जाने के बावजूद पुलिस ने उत्तरदाताओं को 15 दिनों की अवधि

के लिए पुलिस अभिरक्षा में रखे जाने का निर्देश दिए जाने हेतु विशेष न्यायाधीश के समक्ष 1976 की दांडिक विविध याचिका सं. 617 प्रस्तुत की। उत्तरदाताओं ने अपराध के अन्वेषण के लंबित रहने तक उन्हें न्यायिक अभिरक्षा में रखे जाने का निर्देश दिए जाने हेतु उच्च न्यायालय के समक्ष 1976 की दांडिक विविध याचिका सं. 1587 प्रस्तुत की। उत्तरदाताओं ने विशेष न्यायाधीश के समक्ष पुलिस द्वारा उत्तरदाताओं को पुलिस अभिरक्षा में सुपुर्द किए जाने हेतु प्रस्तुत 1976 की दांडिक विविध याचिका सं. 617 को अपास्त किए जाने के लिए भी 1976 की दांडिक विविध याचिका सं. 1605 प्रस्तुत की। उनका आधार यह था कि विशेष न्यायाधीश दंड प्रक्रिया संहिता के अर्थ में दंडाधिकारी नहीं है और इसलिए वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के अधीन कार्य करने तथा अभियुक्त को पुलिस अभिरक्षा में रखने के लिए सशक्त नहीं है।

इस अपील में उठाए गए विवाद्य की सराहना करने के लिए दांडिक विधि (संशोधन) अधिनियम, 1952 के सुसंगत उपबंधों तथा दंड प्रक्रिया संहिता, 1974 के सुसंगत उपबंधों का परीक्षण करना आवश्यक है। दांडिक विधि (संशोधन) अधिनियम, 1952 (1952 का अधिनियम सं. 66) 28-7-1952 को भारतीय दंड संहिता तथा दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 में और संशोधन करने तथा अपराधों के अधिक शीघ्र विचारण का उपबंध करने के लिए अधिनियमित किया गया था। यह ध्यान देने योग्य है कि उक्त अधिनियम भारतीय दंड संहिता तथा दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 के संबंध में एक संशोधी अधिनियम है। अधिनियम की धारा 6 राज्य सरकार को शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा ऐसे क्षेत्र अथवा क्षेत्रों के लिए, जिन्हें अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किया जा सके, जितने विशेष न्यायाधीश आवश्यक हों, नियुक्त करने का अधिकार प्रदान करती है, ताकि भारतीय दंड संहिता की धारा 161, 162, 163, 164, 165 अथवा 165क के अधीन दंडनीय अपराधों अथवा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5 के अधीन दंडनीय अपराधों तथा विनिर्दिष्ट अपराधों को करने के षड्यंत्र, प्रयत्न अथवा उनके दुष्प्रेरण के अपराधों का विचारण किया जा सके। इस प्रकार

नियुक्त विशेष न्यायाधीश, उक्त अपराधों का विचारण करने के लिए, तब तक इस अधिनियम के अधीन विशेष न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए अर्हित नहीं होगा, जब तक कि वह दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 के अधीन सत्र न्यायाधीश, अपर सत्र न्यायाधीश अथवा सहायक सत्र न्यायाधीश न हो या न रहा हो। अधिनियम की धारा 7 यह उपबंध करती है कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 अथवा तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, धारा 6 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अपराधों का विचारण केवल विशेष न्यायाधीश द्वारा ही किया जाएगा। अतः धारा 7(1) के आधार पर धारा 6(1) में उल्लिखित अपराधों का विचारण करने का क्षेत्राधिकार केवल विशेष न्यायाधीश को ही प्रदान किया गया है। हमारी चर्चा के प्रयोजनों के लिए धारा 8 महत्वपूर्ण है और उसे पूर्ण रूप से उद्धृत किया जा सकता है। उक्त धारा के अधीन विशेष न्यायाधीश सशक्त किया गया है :

(i) विचारण के लिए अभियुक्त के उसके समक्ष सुपुर्द किए बिना ही अपराध का संज्ञान ग्रहण करने के लिए; तथा

(ii) अभियुक्त व्यक्तियों का विचारण करते समय, दंडाधिकारियों द्वारा वारंट वादों के विचारण के लिए दंड प्रक्रिया संहिता में विहित प्रक्रिया का पालन करने के लिए।

यह ध्यान देने योग्य है कि विशेष न्यायाधीश, दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन सत्र न्यायाधीश, अपर सत्र न्यायाधीश अथवा सहायक सत्र न्यायाधीश नहीं है, यद्यपि कोई व्यक्ति तब तक विशेष न्यायाधीश नियुक्त नहीं किया जा सकता जब तक कि वह सत्र न्यायाधीश, अपर सत्र न्यायाधीश अथवा सहायक सत्र न्यायाधीश न हो या न रहा हो। विशेष न्यायाधीश विचारण के लिए अभियुक्त के उसके समक्ष सुपुर्द किए बिना ही अपराध का संज्ञान ग्रहण करने के लिए सशक्त है। सत्र न्यायाधीश को किसी अपराध का विचारण करने का क्षेत्राधिकार तभी प्राप्त होता है जब अभियुक्त उसके समक्ष सुपुर्द किया गया हो। इसके अतिरिक्त, सत्र न्यायाधीश दंडाधिकारियों द्वारा वारंट वादों के विचारण के लिए विहित प्रक्रिया का पालन नहीं करता। विशेष न्यायाधीश को केवल अधिनियम की धारा 8(3) में उल्लिखित कुछ प्रयोजनों

के लिए ही सत्र न्यायालय माना गया है, जबकि उपधारा (3) के प्रथम भाग में यह उपबंध किया गया है कि धारा 8 की उपधाराओं (1) तथा (2) में उपबंधित बातों के सिवाय, दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 के उपबंध, जहाँ तक वे इस अधिनियम से असंगत नहीं हैं, विशेष न्यायाधीश के समक्ष की कार्यवाहियों पर लागू होंगे। उक्त उपधारा में यह भी उपबंध किया गया है कि "उक्त उपबंधों के प्रयोजनों के लिए विशेष न्यायाधीश का न्यायालय, जूरी अथवा सहायकों की सहायता के बिना वादों का विचारण करने वाला सत्र न्यायालय समझा जाएगा और विशेष न्यायाधीश के समक्ष अभियोजन का संचालन करने वाला व्यक्ति लोक अभियोजक समझा जाएगा।" यह विधिक कल्पना केवल उस उपधारा में उल्लिखित प्रयोजनों तक ही सीमित है। धारा 8(2) विशेष न्यायाधीश को किसी ऐसे व्यक्ति को क्षमादान प्रदान करने का अधिकार देती है जिससे किसी अपराध के किए जाने से संबंधित साक्ष्य प्राप्त होने की संभावना हो और जिसके संबंध में दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 339 तथा 339(क) के प्रयोजनों के लिए क्षमादान का निवेदन किया गया हो। यह उपधारा इसलिए अधिनियमित की गई क्योंकि विशेष न्यायाधीश, ऐसा न्यायालय न होने के कारण जिसके समक्ष अभियुक्त सुपुर्द किया गया हो, धारा 338 के उपबंधों के अधीन क्षमादान प्रदान नहीं कर सकता था; अतः विशेष न्यायाधीश को क्षमादान प्रदान करने में सक्षम बनाने के लिए यह उपबंध जोड़ा गया। उपधारा 3(क) ने दंड प्रक्रिया संहिता की धाराओं 350 तथा 549 के उपबंधों को विशेष न्यायाधीश के समक्ष की कार्यवाहियों पर लागू कर दिया है और उन उपबंधों के प्रयोजनों के लिए विशेष न्यायाधीश को दंडाधिकारी माना जाएगा। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 350 उत्तरवर्ती दंडाधिकारी को उसके पूर्ववर्ती द्वारा अभिलिखित अथवा आंशिक रूप से उसके पूर्ववर्ती तथा आंशिक रूप से स्वयं उसके द्वारा अभिलिखित साक्ष्य के आधार पर कार्य करने का अधिकार प्रदान करती है। धारा 549 किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसे किसी अपराध के लिए उसके समक्ष प्रस्तुत किया गया हो और जिसका विचारण ऐसे न्यायालय द्वारा किया जाना विधिसम्मत हो जिस पर वह धारा लागू होती है अथवा सैन्य न्यायालय द्वारा किया जाना हो,

दंडाधिकारी को उस रेजीमेंट के कमांडिंग अधिकारी के सुपुर्द करने का अधिकार प्रदान करती है ताकि उसका विचारण सैन्य न्यायालय द्वारा किया जा सके। यह उपबंध भी विशेष रूप से विशेष न्यायाधीश पर लागू किया गया है। धारा 8(क) विशेष न्यायाधीश को कुछ अपराधों का संक्षिप्त रीति से विचारण करने का अधिकार प्रदान करती है तथा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 262 से 265 के उपबंध, जहाँ तक वे लागू हो सकते हैं, लागू किए गए हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि धारा 8(1) विशेष न्यायाधीश को अभियुक्त के उसके समक्ष सुपुर्द किए बिना ही अपराध का संज्ञान ग्रहण करने का अधिकार प्रदान करती है तथा यह निदेश देती है कि अभियुक्त व्यक्तियों का विचारण करते समय वह दंड प्रक्रिया संहिता में विहित प्रक्रिया का पालन करेगा। उपधारा (3) विशेष न्यायाधीश को कुछ प्रयोजनों के लिए सत्र न्यायालय मानती है, जबकि उपधारा (2) विशेष न्यायाधीश को क्षमादान प्रदान करने का अधिकार देती है। उपधारा 3(क) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 350 तथा धारा 549 के उपबंधों को विशेष न्यायाधीश पर लागू करती है और उन उपबंधों के प्रयोजनों के लिए विशेष न्यायाधीश को दंडाधिकारी माना जाता है। धारा 8(क) के अधीन विशेष न्यायाधीश को उन वादों का संक्षिप्त रीति से विचारण करने का अधिकार प्रदान किया गया है जो दंडाधिकारी द्वारा विचारणीय हैं। इस प्रकार दांडिक विधि (संशोधन) अधिनियम के अधीन विशेष न्यायाधीश को कुछ प्रयोजनों के लिए सत्र न्यायालय तथा कुछ अन्य प्रयोजनों के लिए दंडाधिकारी माना गया है और दंडाधिकारी द्वारा प्रयोग की जाने वाली कुछ शक्तियाँ उसे प्रदान की गई हैं। यह ध्यान देना आवश्यक है कि विशेष न्यायाधीश अभियुक्त के उसके समक्ष सुपुर्द किए बिना ही अपराध का संज्ञान ग्रहण करने के लिए सशक्त है और अभियुक्त व्यक्तियों का विचारण करते समय उसे दंडाधिकारियों द्वारा वारंट वादों के विचारण के लिए विहित प्रक्रिया का पालन करना अपेक्षित है। धारा 8(3) के अधीन, उपधाराओं (1) तथा (2) में उपबंधित बातों के सिवाय, दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंध, जहाँ तक वे दांडिक विधि (संशोधन) अधिनियम से असंगत नहीं हैं, लागू किए गए हैं। इस तथ्य के साथ कि दांडिक विधि

(संशोधन) अधिनियम, जहाँ तक दंड प्रक्रिया संहिता तथा भारतीय दंड संहिता का संबंध है, एक संशोधी अधिनियम है, इसका संयुक्त रूप से परिणाम यह है कि दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंध तब तक प्रवृत्त माने जाएंगे जब तक कि दांडिक विधि (संशोधन) अधिनियम में ऐसा कोई उपबंध न हो जो दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों से असंगत हो।

अब हम दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के उपबंधों का परीक्षण करेंगे। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 यह अपेक्षा करती है कि जब किसी व्यक्ति को गिरफ्तार कर अभिरक्षा में रखा गया हो और यह प्रतीत हो कि अन्वेषण 24 घंटे की अवधि के भीतर पूरा नहीं किया जा सकता, तब पुलिस अधिकारी अभियुक्त को दंडाधिकारी के समक्ष प्रस्तुत करेगा। जिस दंडाधिकारी के समक्ष अभियुक्त प्रस्तुत किया जाता है, यदि वह वाद का विचारण करने के लिए क्षेत्राधिकार रखने वाला दंडाधिकारी नहीं है, तो भी वह अभियुक्त को ऐसी अभिरक्षा में, जिसे वह उपयुक्त समझे, अधिकतम 15 दिनों की कुल अवधि के लिए निरुद्ध किए जाने को प्राधिकृत कर सकता है। यदि उसे वाद का विचारण करने का क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं है और वह यह समझता है कि आगे निरुद्ध रखा जाना आवश्यक है, तो वह अभियुक्त को क्षेत्राधिकार रखने वाले किसी दंडाधिकारी के समक्ष भेजे जाने का आदेश दे सकता है। वाद का विचारण करने के लिए क्षेत्राधिकार रखने वाला दंडाधिकारी, पुलिस अभिरक्षा के अतिरिक्त किसी अन्य अभिरक्षा में अभियुक्त के निरोध को 15 दिनों की अवधि के पश्चात् भी, परंतु कुल 60 दिनों से अधिक नहीं, प्राधिकृत कर सकता है। वर्तमान वाद में अभियुक्तों को विशेष न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत किया गया था, जो निर्विवाद रूप से वाद का विचारण करने के लिए क्षेत्राधिकार रखने वाला प्राधिकारी है। उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया तर्क यह था कि "वाद का विचारण करने के लिए क्षेत्राधिकार रखने वाला दंडाधिकारी" शब्द विशेष न्यायाधीश पर लागू नहीं हो सकते। निस्संदेह धारा 167 में "विशेष न्यायाधीश" शब्द का उल्लेख नहीं है, परंतु प्रश्न यह है कि क्या केवल इसी कारण विशेष न्यायाधीश को वाद का विचारण करने के लिए क्षेत्राधिकार रखने वाला दंडाधिकारी नहीं माना जाएगा। दंड प्रक्रिया

संहिता के अध्याय 12 के उपबंध पुलिस को सूचना तथा उसकी अन्वेषण संबंधी शक्तियों से संबंधित हैं। यह देखा जा सकता है कि उसमें कुछ धाराएँ ऐसी हैं जिनमें पुलिस को वाद का विचारण करने के लिए क्षेत्राधिकार रखने वाले दंडाधिकारी से निर्देश प्राप्त करना अपेक्षित है। धारा 155(2) यह अपेक्षा करती है कि कोई भी पुलिस अधिकारी वाद का विचारण करने के लिए क्षेत्राधिकार रखने वाले दंडाधिकारी के आदेश के बिना किसी असंज्ञेय वाद का अन्वेषण प्रारंभ नहीं करेगा और न ही उसका विचारण करेगा। इसी प्रकार धारा 157 यह अपेक्षा करती है कि जब पुलिस अधिकारी को ऐसे अपराध के किए जाने का संदेह करने का कारण हो जिसका अन्वेषण वह धारा 156 के अधीन करने के लिए सशक्त है, तब वह तत्काल उसकी रिपोर्ट ऐसे दंडाधिकारी को प्रेषित करेगा जो पुलिस प्रतिवेदन पर उस अपराध का संज्ञान लेने के लिए सशक्त है। धारा 173 यह अपेक्षा करती है कि अध्याय के अधीन प्रत्येक अन्वेषण पूर्ण होने पर थाना प्रभारी, विहित प्ररूप में पुलिस प्रतिवेदन ऐसे दंडाधिकारी को प्रेषित करेगा जो उस अपराध का संज्ञान लेने के लिए सशक्त है। दांडिक विधि (संशोधन) अधिनियम की धारा 8 विशेष रूप से विशेष न्यायाधीश को अभियुक्त के उसके समक्ष सुपुर्द किए बिना ही अपराध का संज्ञान ग्रहण करने का अधिकार प्रदान करती है। अभियुक्त के उसके समक्ष सुपुर्द किए बिना अपराध का संज्ञान ग्रहण करते समय वह सत्र न्यायाधीश नहीं होता, क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 193 यह उपबंध करती है कि कोई भी सत्र न्यायालय किसी अपराध का मूल अधिकारिता के रूप में तब तक संज्ञान नहीं लेगा जब तक कि वह वाद संहिता के अधीन किसी दंडाधिकारी द्वारा उसके समक्ष सुपुर्द न किया गया हो। वस्तुतः वह सत्र न्यायाधीश नहीं है क्योंकि कोई भी सत्र न्यायाधीश अभियुक्त के सुपुर्द किए बिना सत्र न्यायालय के रूप में अपराध का संज्ञान ग्रहण नहीं कर सकता। दांडिक विधि (संशोधन) अधिनियम एक संशोधी अधिनियम है और उसके उपबंधों का उद्देश्य कुछ अपराधों का शीघ्र विचारण सुनिश्चित करना है। दांडिक विधि (संशोधन) अधिनियम का उद्देश्य प्रक्रिया संबंधी विधि की पूर्ण संहिता होना नहीं है। दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंध तब तक अपवर्जित नहीं

होते जब तक कि वे दांडिक विधि (संशोधन) अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हों। अतः यह निष्कर्ष निकालने में कोई कठिनाई नहीं है कि जहाँ दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंध दांडिक विधि (संशोधन) अधिनियम के उपबंधों से असंगत नहीं हैं, वहाँ दंड प्रक्रिया संहिता लागू होगी। यदि विशेष न्यायाधीश, जिसे अभियुक्त के उसके समक्ष सुपुर्द किए बिना ही अपराध का संज्ञान ग्रहण करने की शक्ति प्राप्त है, उसके समक्ष प्रस्तुत अभियुक्त को रिमांड पर भेजने अथवा जमानत पर रिहा करने की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सशक्त न माना जाए, तो इससे एक विसंगतिपूर्ण स्थिति उत्पन्न होगी। ऐसा दंडाधिकारी, जो वाद का विचारण करने के लिए क्षेत्राधिकार रखने वाला नहीं है, अभियुक्त को 15 दिनों से अधिक अभिरक्षा में नहीं रख सकता और उस अवधि की समाप्ति के पश्चात् यदि वाद का विचारण करने के लिए क्षेत्राधिकार रखने वाले दंडाधिकारी में विशेष न्यायाधीश सम्मिलित न हो, तो इसका अर्थ यह होगा कि अभियुक्त की रिमांड अवधि बढ़ाने अथवा उसे जमानत पर रिहा करने का कोई प्राधिकारी ही नहीं होगा। इसी प्रकार यदि विशेष न्यायाधीश को वाद का विचारण करने के लिए क्षेत्राधिकार रखने वाला दंडाधिकारी न माना जाए, तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अधीन पुलिस प्रतिवेदन भी उसके समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जा सकेगा। यह उल्लेखनीय है कि सामान्य उपबंध अधिनियम की धारा 32 में "दंडाधिकारी" को ऐसे प्रत्येक व्यक्ति के अंतर्गत परिभाषित किया गया है जो तत्समय प्रवृत्त दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन दंडाधिकारी की समस्त अथवा किसी भी शक्ति का प्रयोग करता है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 3 यह उपबंध करती है कि किसी अर्हकारी शब्द के अभाव में "दंडाधिकारी" के प्रति प्रत्येक निर्देश का अर्थ, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, उसकी उपधाराओं में वर्णित रीति से लगाया जाएगा। यदि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो तो "दंडाधिकारी" पद के अंतर्गत ऐसे दंडाधिकारी भी सम्मिलित हो सकते हैं जिनका उस धारा में विनिर्देश नहीं किया गया है। सामान्य उपबंध अधिनियम में "दंडाधिकारी" की परिभाषा के साथ इसे पढ़ने पर, धारा 167

के प्रयोजनों के लिए विशेष न्यायाधीश को दंडाधिकारी के रूप में अभिहित करने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती।

विशेष न्यायाधीश दंडाधिकारी नहीं है, इस निष्कर्ष पर पहुँचने में उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय के *मेजर ई. जी. बसुदेव बनाम बम्बई राज्य*, [1962] 2 एस.सी.आर. पृष्ठ 195 में प्रतिवेदित निर्णय पर अत्यधिक निर्भरता व्यक्त की। इस न्यायालय ने उस मामले में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 549 के अधीन बनाए गए नियम 3 का निर्वचन करते हुए यह अभिनिर्धारित किया था कि वह नियम केवल दंडाधिकारी पर लागू होता है, विशेष न्यायाधीश पर नहीं, क्योंकि नियम 3 के अर्थ में विशेष न्यायाधीश दंडाधिकारी नहीं है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 549 केंद्रीय सरकार को उन मामलों के संबंध में नियम बनाने का अधिकार प्रदान करती है जिनमें थल सेना, नौसेना अथवा वायु सेना विधि के अधीन व्यक्तियों का विचारण या तो ऐसे न्यायालय द्वारा किया जाना हो जिस पर यह संहिता लागू होती है अथवा सैन्य न्यायालय द्वारा। केंद्रीय सरकार ने उक्त धारा के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए नियम बनाए। इस न्यायालय द्वारा विचारित नियम 3 इस प्रकार है :—

> "जब थल सेना, नौसेना अथवा वायु सेना विधि के अधीन कोई व्यक्ति किसी दंडाधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है और उस पर ऐसे अपराध का अभियोग लगाया जाता है जिसके लिए उसका विचारण सैन्य न्यायालय द्वारा किया जाना दायित्वपूर्ण है, तब ऐसा दंडाधिकारी उस अपराध का विचारण करने अथवा उस व्यक्ति को उस अपराध के विचारण के लिए सत्र न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय के समक्ष सुपुर्द करने की कार्यवाही तब तक नहीं करेगा, जब तक कि—
>
> (क) वह अभिलिखित किए जाने वाले कारणों के आधार पर यह मत न बनाए कि सक्षम थल सेना, नौसेना अथवा वायु सेना प्राधिकारी द्वारा उसे वहाँ से हटाए जाने की प्रतीक्षा किए बिना उसे ऐसी कार्यवाही करनी चाहिए; अथवा
>
> (ख) उसे ऐसे प्राधिकारी द्वारा वहाँ से हटा न लिया गया हो।"

नियम 3 से यह स्पष्ट है कि दंडाधिकारी ऐसे व्यक्तियों का विचारण नहीं करेगा और न ही उन्हें सत्र न्यायालय द्वारा विचारण के लिए उसके समक्ष सुपुर्द किए जाने के उद्देश्य से अन्वेषण करेगा, जब तक कि उसका यह मत न हो कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा उसे वहाँ से हटाए जाने की प्रतीक्षा किए बिना उसे ऐसा करना चाहिए। अतः यह उपबंध ऐसे दंडाधिकारी की परिकल्पना करता है जो स्वयं उस अपराध का विचारण कर सकता है अथवा अभियुक्त को सत्र न्यायालय के समक्ष सुपुर्द किए जाने के उद्देश्य से अन्वेषण कर सकता है। नियम का यह भाग विशेष न्यायाधीश पर लागू नहीं होता क्योंकि वह अभियुक्त को अपने समक्ष सुपुर्द किए जाने के उद्देश्य से अन्वेषण नहीं कर सकता। इसलिए नियम 3(क) में उल्लिखित दंडाधिकारी के अंतर्गत विशेष न्यायाधीश सम्मिलित नहीं हो सकता। इस न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 549 अध्याय 21 की धाराओं में से एक नहीं है तथा वह केंद्रीय सरकार को वारंट वादों की प्रक्रिया में संशोधन करने की शक्ति प्रदान नहीं करती। साथ ही यह भी नहीं कहा जा सकता कि केवल इसलिए कि विशेष न्यायाधीश द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया वारंट वादों की प्रक्रिया है, वह नियम 3 के अर्थ में ऐसे व्यक्ति का विचारण करने के लिए सशक्त दंडाधिकारी हो जाएगा। उक्त निर्णय पर अवलंबन करते हुए विद्वान न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि वही तर्क वर्तमान वाद के तथ्यों पर भी लागू होगा। विद्वान न्यायाधीश द्वारा इस न्यायालय के उक्त निर्णय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 549 के अधीन बनाए गए नियम 3 से हटाकर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 पर लागू करने में त्रुटि की गई। नियम 3 में अभिप्रेत दंडाधिकारी ऐसा दंडाधिकारी है जो अभियुक्त को सत्र न्यायालय के समक्ष सुपुर्द किए जाने के उद्देश्य से अन्वेषण करने के लिए सशक्त हो, और यह उपबंध विशेष न्यायाधीश पर लागू नहीं हो सकता।

परिणामतः, दांडिक विधि (संशोधन) अधिनियम तथा दंड प्रक्रिया संहिता के सुसंगत उपबंधों पर विचार करने के पश्चात् हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचने में कोई संकोच नहीं है कि विशेष न्यायाधीश दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167 के अधीन वाद का विचारण करने के लिए सशक्त दंडाधिकारी है। विशेष न्यायाधीश उस दंडाधिकारी को प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करेगा जिसे वाद का विचारण करने का क्षेत्राधिकार प्राप्त है। अपील स्वीकृत की जाती है तथा उच्च न्यायालय का आदेश अपास्त किया जाता है।

एन. वी. के. अपील स्वीकृत।

खंडन (डिस्क्लेमर) - स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।